

प्राचीन भारत में शिल्पकार वर्ग की सामाजिक स्थिति: एक अध्ययन

डॉ० प्रदीप सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग, टी०डी० पी०जी० कालेज, जौनपुर

मानव सभ्यता के विकास के साथ ही शिल्पी वर्ग का आविर्भाव होता है। मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ सामाजिक विकास ने विभिन्न व्यवसायों को जन्म दिया। कृषि और पशुपालन के अतिरिक्त शिल्प को भी मनुष्य ने आवश्यक समझा। प्रागैतिहासिक काल से ही शिल्प के उदाहरण मिलने लगते हैं। बेधनी, फलक तथा कुठार हमें आधार प्रदान करते हैं कि शिल्प का उदय इस युग में हो चुका था लेकिन प्राप्त पुरावशेष, किसी शिल्पी समाज के सन्दर्भ प्रदान करने में असमर्थ है। शिल्प के सन्दर्भ ने हमें पाषाण काल और विशेषकर नवपाषाण काल से ही मिलना प्रारम्भ होता है। नव पाषाण काल में कृषि के विकास ने पाषाण उपकरणों के प्रचलन को प्रोत्साहित किया। पाषाण काल में कृषि के अतिरिक्त नव पाषाणकालीन पुरास्थलों से मिट्टी के बर्तन मिलते हैं। हड़प्पा सभ्यता में यह परम्परा न केवल विद्यमान थी, अपितु इसमें निरन्तर प्रगति भी हुई। कुम्भकार, घर बनाने वाले कारीगर, स्वर्णकार, ईंट बनाने वाले, बढई आदि व्यवसायों की झलक दिखाई देती है। ऋग्वैदिक काल से ही अनेकों व्यावसायिक वर्गों का सन्दर्भ मिलने लगता है। इसमें लोहार, चर्मकार, नापित, बढई आदि प्रमुख थे। निश्चय ही ये पृथक-पृथक व्यावसायिक समूह विभिन्न सामाजिक वर्ग के रूप में विकसित हुए, जिन्हें सामाजिक जाति व्यवस्था में शूद्र वर्ण के अन्तर्गत रखा गया था। उत्तर वैदिक काल आते-आते शिल्पियों में बहुगुणन विकास हुआ जिसने नये-नये उद्योग धर्मों को जन्म दिया। इसी अनुपात में नये-नये शिल्पी वर्ग आस्तित्व में आया जैसे- कर्मार, रथकार, बढई, कुलाल, रज्जुसर्ग, मणिकार, सुराकार, विदलाकार, निषाद आदि अनेक व्यवसाय प्रधान वर्गों का वर्णन उत्तर वैदिक कालीन ग्रन्थों² में मिलता है। इन शिल्पी वर्गों में कुछ को विशेष सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था जिसमें रथकार, लोहार एवं बढई मुख्य थे। कृषि और युद्ध के उपकरणों को बनाने के कारण लोहार को अधिक महत्व दिया जाता था। लोहार को मनीषी शिल्पकार³ कहा जाता था। बौद्ध ग्रन्थों⁴ में कुम्भकार, तन्तुवाय, बढई, लोहार आदि शिल्पी वर्ग का वर्णन मिलता है। मौर्य काल में आने वाला यूनानी राजदूत मेगस्थनीज ने सात वर्गों का वर्णन किया है उनमें चौथा वर्ग दस्तकारों एवं व्यापारियों का था दस्तकारों का कार्य शिल्प ही था जो उनके सामाजिक जीवन का आधार था ये राजस्व के एक अच्छे स्रोत के रूप में देखे जाते थे। पोतकारों एवं शस्त्रकारों को कर में छूट दिया गया था। इसका कारण उनका राजकीय सेवा और उपयोगिता को ध्यान में रखकर किया गया था यह सामाजिक व्यवस्था लचीली व्यवस्था की ओर संकेत करता है जो ब्राह्मणों के समकक्ष शिल्पकारों को खड़ा करता है। क्योंकि कर में छूट ब्राह्मणों को भी प्रदान किया गया था। महाकवि कालिदास ने अभिज्ञान-शाकुन्तलम् में पैतृक व्यवसाय के बारे में चर्चा किये हैं जोकि स्वाभाविक कर्म था, वह क्यों न निन्दित ही हो उसे छोड़ना नहीं चाहिये। पूर्व-मध्यकालीन सामाजिक प्रगति और उपलब्धियों का भारतीय इतिहास में अपना एक विशिष्ट स्थान है। व्यावसायिक वर्गों, श्रमिकों और कृषिकों को बदलते हुये परिवेश में स्तरोन्नयन इस काल की एक प्रमुख देन है। स्थानीय एवं आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था के आविर्भाव ने शिल्प संघों को गतिहीन और वंशानुगामी बनाकर उन्हें जाति के रूप में घनीभूत होने में प्रेरकत्व का कार्य

किया ग्राम समुदायों के अन्तर्गत कई जातियां और उप-जातियों का उदय हुआ जिनमें से प्रत्येक किसी न किसी धन्धे या व्यवसाय का प्रतिनिधित्व कर रहा था। इस समय तक प्राचीन काल के चार वर्णों का सिद्धान्त पुराना पड़ चुका था समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के अतिरिक्त एक ऐसा भी वर्ग था, जिसकी उत्पत्ति का एकमात्र आधार उसके द्वारा किया जाने वाला व्यवसाय और शिल्प था इनके व्यवसाय शिल्प ही इन जातियों के पहचान का आधार बन गया इन जातियों के लिये किसी नये सामाजिक वर्ग का निर्माण नहीं किया गया और इनको समाज में निम्न वर्ग शूद्र के अन्तर्गत रखा दिया गया। एक बार अस्तित्व में आने के बाद सामाजिक स्थिति में यह विभाजन दिन-प्रतिदिन कठोर होता चला गया। जिससे ऊपर से नीचे तक इसमें परिवर्तन लगभग असंभव-सा हो गया भौतिक तत्वों के साथ-साथ इन्हें धार्मिक मान्यता भी मिल गयी पूर्व मध्यकाल से इनकी स्थिति में उन्नति का प्रमाण मिलता है शूद्रों के द्वारा इस समय कृषि कार्य किया जा रहा था पहले की अपेक्षा पूर्व मध्यकाल में शूद्रों की दशा धार्मिक एवं राजनीतिक रूप से भी अपेक्षा अच्छी दिखाई देती है। इस समय शूद्र वर्ण के दो वर्ग दिखाई देते हैं। 1. स्पृश्य, 2. अस्पृश्य। अस्पृश्य शूद्र कृषक एवं शिल्पी थे अस्पृश्य शूद्र नगर के बाहर ही रहते थे। यह विभाजन न तो धार्मिक था और न ही सामाजिक था बल्कि यह विभाजन कुछ व्यवसायों की शुद्धता एवं अशुद्धता के आधार पर अपनायी गयी प्रक्रिया थी जो समय के साथ अत्यधिक कठोरता के साथ चल रही थी कालान्तर में इसे धार्मिक और सामाजिक मान्यता प्राप्त हो गई विभिन्न शिल्प कार्य करने वाले शूद्रों के शिल्पाधृत जाति के रूप में परिवर्तन पूर्व मध्यकाल में वृहद परिणाम में हुआ। समरागण सूत्रधार⁶ में कहा गया है कि वे शूद्र जाति में उत्पन्न हुए हैं जो धर्म का पालन नहीं करते, पशुपालन और शिल्पकला से जिनकी आजीविका चलती है। पूर्व मध्यकालीन ग्रन्थों में पेशेवर जातियों का वर्णन प्राप्य है जो श्रेणीबद्ध रूप में संगठित थी। भट्टोत्पल⁷ श्रेणियों को एक ही जाति के लोगों का संगठन बताया है। देवणभट्ट⁸ एवं मित्रमिश्र⁹ ने श्रेणियों को 18 निम्न जातियों का संगठन बताया है। जिनेश्वरसूरि¹⁰ जैन आचार्य ने स्वर्णकारों एवं कुम्भकारों की श्रेणियों को अधम कहा है। स्कन्दपुराण¹¹ के छठे खण्ड में शूद्रों को निम्नलिखित 18 उपजातियों का वर्णन मिलता है जिसमें शिल्पी, नर्तक, बढई, कुम्भकार, वर्धिक, मछुवा, औनाभिक, चमार, शिकारी, बाजे वाला, कौल्हिक, चित्रक, सूत्रक, धोबी, गच्छक, जुलाहा, तेली थे सभा श्रृंगार¹² नामक ग्रन्थ में 108 पेशेवर जातियों का वर्णन मिलता है। जो अपने शिल्प के माध्यम से समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करती थी। जैन ग्रन्थ जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति¹³ में भी 18 शिल्पी श्रेणियों का वर्णन मिलता है इस ग्रन्थ में भी स्पृश्य तथा अस्पृश्य दो वर्गों में शिल्पी श्रेणियां विभाजित की गयी है। ग्यारहवीं शताब्दी में भारत आने वाला अरब यात्री अलबरूनी¹⁴ ने रजको, चर्मकारो, चिड़ियामारो, मदारी, टोकरी बनाने वाले, ढाल निर्माता, नाविक, मछुवारे और बुनकरों की श्रेणियों का वर्णन किया है। पूर्व मध्यकालीन अभिलेखों¹⁵ में कुम्भकारों, मालियो, तमोलियों संगतराशो, शराब बनाने वाले और तेलियो को शूद्र कहा गया है। पूर्व मध्यकाल में जैसे-जैसे व्यापार और वाणिज्य में शिथिलता आती गयी, वैसे-वैसे शिल्पी संघ अवरूद्ध गतिहीन और अधिकाधिक वंशानुगामी होते चले गये। इससे शिल्पियों का धीरे-धीरे अपना एक विशिष्ट वर्ग बन गया। इन शिल्पाधृत जातियों को आदिम जातियों के समान मिश्रित जाति कहा गया है।¹⁶ इन्हें केवल मिश्रित जाति ही कहकर नहीं छोड़ दिया गया है इनके ऊपर भी शूद्रों के लिये सृजित वर्जनाओं एवं निर्योग्यताओं का आरोपण किया गया है।¹⁷ अपरार्क के अनुसार ब्राह्मण को गायक, नट, वैद्य, सुनार,

लुहार, शस्त्र बेचने वाले, गांव के अधिकारी, चमार, कुम्भकार, पहलवान, बांस की वस्तुयें बनाने वाले, आदिम जाति के साहूकार और ऐसे पुरोहितों का जो पूरे गांव में पुरोहित का कार्य करता हो, भोजन नहीं करना चाहिये।¹⁸ अपरार्क द्वारा निर्धारित जातियों में लगभग सभी महत्वपूर्ण शिल्पी आ जाते हैं। पूर्वकाल के शूद्रों को शिल्पकर्म की अनुमति उसी दशा में दी गई है जब वे द्विज की सेवा द्वारा अपनी जीविका नहीं चला पा रहे हो। लेकिन यह आदर्श मात्र ही प्रतीत होता है जो यथार्थ से साम्य नहीं रखता क्योंकि आगे चलकर शिल्पकर्म को शूद्रों का सामान्य कर्तव्य बताया गया है। शिल्पी पूर्व-मध्यकाल में जन नगर के बाहर रहते थे लेकिन वे संगठित होकर रहते थे। राजतरंगिणी¹⁹ में चर्मकारों को नगर के बाहर रहने का वर्णन मिलता है अभिलेखीय साक्ष्यों द्वारा भी शिल्पकारों के नगर के बाहर रहने की जानकारी प्राप्त होती है। सीयदोणी अभिलेख²⁰ में कहा गया है कि इस नगर के एक भाग में पत्थर पर काम करने वाले शिल्पी, तेली एवं स्वर्णकार आदि निवास करते थे तथा दूसरे भाग में कास्यकारों की वीथि थी। एक ही व्यवसाय या शिल्प कार्य करने वाले विभिन्न वर्गों के लोग समान पेशाकर्मियों लोगों को अपने निकट पाते होंगे। समान शिल्प कर्म करने, निकट निवास करने तथा शिल्पगत कौशल की दक्षता हेतु इनमें आपसी सौहार्द एवं भाईचारा अपेक्षित था। यह निकटता इनके खान-पान तथा वैवाहिक सम्बन्धों के निर्मित होने से सूत्र का कार्य किया। इससे समान कार्य करने वाले लोगों में वैवाहिक सम्बन्ध तथा एक साथ खान-पान का सम्बन्ध बना। भारतीय समाज की मनोवृत्ति में स्तरीकरण और अलगाव एक समान प्रक्रिया के रूप में दिखाई देती हैं। इसी मनोवृत्ति ने इन शिल्पियों को समाज में एक अलग इकाई के रूप में पहचान बनाने के लिये उद्दीपन प्रदान किया लेकिन इन श्रेणीबद्ध शिल्प समूहों पर आरोपित निर्योग्यताएं एवं वर्जनाएं सैद्धान्तिक रूप में ही अधिक मान्य रह सकी, प्रभावी रूप में इस पर अमल करना उतना आसान नहीं था, क्योंकि इनमें से अनेक व्यवसाय समान तथा राज्य के लिए अत्यन्त उपयोगी थे। जैसाकि मौर्य काल में देखते हैं, शस्त्र निर्माता और पोतकार को कर छूट प्रदान किया गया था ऐसा करने का कोई कारण नहीं दिखता। एक तरफ तो इनकी राजकीय उपयोगिता को ध्यान में रखकर कर में छूट दी जाये और दूसरे तरफ उनको सामाजिक रूप में प्रताड़ित किया जाय या हीन दृष्टि से देखा जाये। नौवीं शताब्दी के धर्मशास्त्रकार मेधातिथि²¹ ने शूद्रों को पंच महायज्ञ करने की अनुमति प्रदान की। शूद्र व्याकरण के शिक्षक नियुक्त किये जाते थे²² शूद्रों की स्थिति में स्तरोन्नयन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रमाण अग्निपुराण²³ में मिलता है। अग्निपुराण के अनुसार राजा के अभिषेक में अन्य मन्त्रियों की भांति शूद्र मंत्री की उपस्थिति भी अनिवार्य थी। इससे दो बातें निहित हैं। एक तो शूद्रा वर्ण के लोग भी मंत्री बनते थे दूसरा यह कि उनको भी महत्व दिया जाता था। खेलारी अभिलेख²⁴ में देवपाल नामक मोची द्वारा मन्दिर बनवाए जाने का वर्णन मिलता है यह तथ्य निम्नतम वर्ग के धार्मिक अधिकारों की पुष्टि करता है शिल्पाश्रयी जातियों को राजकीय सेवाओं में भी नियुक्त किया जाता था। तन्तुवाय परिवार में उत्पन्न पवनदूतम का लेखक धोयी सेन शासक लक्ष्मण सेन का दरबारी कवि था।²⁵ राजकीय परिवार के निकट रहने से उनके सामाजिक स्थिति में सुधार अवश्य ही हुआ होगा। भले ही यह सामाजिक स्तरोन्नयन उस व्यक्ति के पदभार धारण करने के समय तक ही रही हो। लेकिन इससे शिल्पी वर्ग में अपनी स्थिति सुधारने की प्रेरणा जरूर मिला होगा। यह सामाजिक प्रतिष्ठा और आर्थिक स्वालम्बन की भावना ने लोगों को अपने-अपने व्यवसायों में दक्षता अर्जित करने के लिये प्रेरित किया। व्यवसायों के पैतृक होने के कारण भी कुछ

सहायता मिली इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि द्विजों के बाद समाज के अन्य सदस्यों की जाति उनके व्यवसाय अथवा शिल्प पर आश्रित थे समाज की एक शेष किन्तु महत्वपूर्ण इकाई शिल्पियों की थी, जो अपने हस्तकौशल द्वारा समाज के विकास में मौन योगदान दे रहे थे। वे धर्म के उत्थान में भी सहयोग कर रहे थे पूर्व मध्यकाल में उन्हें हेय दृष्टि से नहीं देखा जाता था बल्कि इस समय उनको सामाजिक उत्थान में महत्वपूर्ण माना जाता था अतः उनका हर प्रकार सहयोग लिया जाता था। लेकिन इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि उनको द्विज जातियों के समान माना जाता रहा होगा इतना प्रतिष्ठा मिलने के बाद भी उनको समाज में अलग डिब्बा में तथा द्विजों को अलग डिब्बों में रखा गया था।

सन्दर्भ

1. ऋग्वेद, सायण भाष्य सहित सं० एफ० मैक्सूलर 1890-92, भाग 3
2. तैत्तिरीय ब्राह्मण सं० शामशास्त्री, मैसूर, 1925, 3, 4, 1
3. अथर्ववेद 3, 5, 6
4. दीर्घनिकाय 1, पृ० 51
5. अवस्थी शशि, प्राचीन भारतीय समाज, दिल्ली 1913, तृतीय संस्करण, पृ० 461
6. भोज, सभाश्रृंगार, 7, 16
7. भटटोत्पल वृहत्संहिता पर टीका, 34, 9
8. देवणभट्ट स्मृति चन्द्रिका 3
9. मित्र मिश्र, व्यवहारकाण्ड 1, 12
10. कथाकोशप्रकरण, भूमिका
11. स्कन्दपुराण 6
12. सभाश्रृंगार सं० आगरचन्द नाहता, वाराणसी, संवत् 2011, पृ० 147
13. जम्बूद्वीप प्रज्ञापति 43, पृ० 193
14. सचाउ, अलबरूनीज इण्डिया, दो भाग, लन्दन 1990, भाग 1, पृ० 101
15. शर्मा, दशरथ, राजस्थान थू ए एजेज, पृ० 427, बीकानेर 1968



16. नियोगी, पुष्पा, ब्राह्मणिक सेटलमेंट्स इन डिफरेंट सब डिविजन ऑफ बंगाल, कलकत्ता 1967, पृ0 56
17. आपस्तम्ब धर्मसूत्र 1, 1, 1.6
18. शर्मा, राम शरण, शूद्राज इन ऐशियण्ट इंडिया हिन्दी अनु0 नई दिल्ली 1995, पृ0 229-30
19. कल्हण राजतरंगिणी (सं0) विश्वबन्धु होशियारपुर 1963, 4, 55
20. इपिग्राफिया इण्डिका, भाग 2, पृ0 162-79
21. मेधातिथि मनुस्मृति पर टीका 3, 69
22. मेधातिथि, वही 3, 67
23. अग्निपुराण 118, 317
24. कार्पस इन्सक्रिप्शनम इण्डिकारम 4, भाग 2, पृ0 579
25. धोयी पवनदूतम 4, बी0पी0 मजूमदार सोशियो-इकोनोमिक हिस्ट्री ऑफ नार्दन इण्डिया, पृ0 111